• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो प्राणी को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष १२ | गौराब्द ४८०, मास—माधव १८, वार—संकर्षण
सोमवार, ३० माघ, सम्वत् २०२३, १३ फरवरी, १९६७ | संख्या ९

श्रीव्रजविलास-स्तवः

[गतांक से आगे]

दूतीभिर्बहुचाटुभिः सखिकुलेनालं वचोभङ्गिभिः
पादान्ते पतनैर्व्रजेन्द्रतनयेनापि क्रुधालीगणैः ।
राधायाः स हि शक्यते वदयितुं यो नैव मानो यया
फुत्कृत्यैव निरस्यते सुकृतिनीं वंशीं सखीं तां नुमः ॥४९॥

स्फीतस्ताण्डविको हरेर्मुरलिका-नादेन नृत्योत्सवं
घूर्णच्चारु-शिखण्डवल्गु सरसीतीरे निकुञ्जाग्रतः ।
तन्वन् कुञ्जविहारिणोः सुखभरं सम्पादयेदयस्तयोः
स्मृत्वा तं शिखिराजमुत्सुकतया बाढ़ं विदक्षामहे ॥५०॥

सप्ताहं मुरमर्दनः प्रणयतो गोष्ठैकरक्षोत्सुको
विभ्रन्मानमुदारपाणिरमणीयंस्मै सलीलं ददौ ।
गान्धर्वा-मुरभिद्विलासविगलित्-काश्मीररज्यद्गुह-
स्तत्खट्टायितरत्नसुन्दरशिलो गोवर्द्धनः पातु वः ॥५१॥

नीपैश्चम्पक-पालिभिर्नव-वराशोकै रसालोत्करैः
पुन्नागैर्वकुलैर्लवङ्गलतिका-वासन्तिकाभिर्वृतैः ।
हृद्यं तत्प्रियकुण्डयोस्तटमिलन्मध्यप्रदेशं परं
राधामाधवयोः प्रियस्थलमिदं केल्यास्तदेवाश्रये ॥५२॥

श्रीवृन्दाविपिनं सुरम्यमपि तच्छ्रीमान् स गोवर्द्धनः
स रासस्थलिकाप्यलं रसमयी किं तावदन्यत् स्थलम् ।
यस्याप्यंशलवेन नार्हति मनाक् साम्य मुकुन्दस्य तत्
प्राणेभ्योऽप्यधिकप्रियेव दयितं तत्कुण्डमेवाश्रये ॥५३॥

स्फीते रत्नसुवर्ण-मौक्तिकभरैः सन्निर्मिते मण्डपे
थुत्कारं विनिधाय यत्र रभसात्तौ दम्पती निर्भरम् ।
तन्वाते रतिनाथ-नर्म-सचिवौ तद्राज्य-चर्चां मुदा
तं राधा-सरसोतटोज्ज्वल-महाकुञ्जं सदाहं भजे ॥५४॥

कान्त्या हन्त मिथः स्फुटं हृदितटे सम्बिम्बितं द्योतते
प्रीत्या तन्मिथुनं मुदा पदकवद्रागेण विभ्रदययोः ।
धात्रा भाग्यभरेण निर्मिततरे त्रैलोक्यलक्ष्म्यास्पदे
गौर-श्यामतमे इमे प्रियतमे रूपे कदाहं भजे ? ॥५५॥

नेत्रोपान्त-विघूर्णनैरलघु तद्दोर्मूल-सञ्चालनै-
रीषद्धास्यरसैः सुधाधरधयैश्चुम्बैर्दृढालिङ्गनैः ।
एतैरिष्ट-महोपचार-निचयैस्तन्नव्ययुनोर्यूगं
प्रीत्या यं भजते तमुज्ज्वल-महाराजं प्रवन्दामहे ॥५६॥

नेत्रे दैर्घ्यमपाङ्गयोः कुटिलता वक्षोज-वक्षःस्थले
स्थौल्यं तन्मृदु वाचि वक्रिमधुरा श्रोणौ पृथुस्फारता ।
सर्वाङ्गे वरमाधुरी स्फुटमभूद्येनेह लोकोत्तरा
राधामाधवयोरलं नववयःसन्धिं सदा तं भजे ॥५७॥

दुष्टारिष्टवधे स्वयं समुदभूत् कृष्णाङ्घ्रिपद्मादिदं
स्फीतं यन्मकरन्द-विस्तृतिरिवारिष्टाख्यमिष्टं सरः ।
सोपानैः परिरञ्जितं प्रियतया श्रीराधया कारितैः
प्रेम्णालिङ्गदिव प्रिया-सर इदं तन्नौम्य नित्यं भजे ॥५८॥

कदम्बानां व्रातैर्मधुपकुलझंकार-ललितैः
परीते यत्रैव प्रिय-सलिल-लोलाहृति मिषैः ।
मुहुर्गोपेन्द्रस्यात्मजमभिसरन्त्यम्बुज-दृशो
विनोदेन प्रीत्या तदिदमवतात् पावनसरः ॥५९॥
पर्जन्येन पितामहेन नितरामाराध्य नारायणं
त्यक्त्वाहारमभूदपुत्रक इह स्वीयात्मजे गोष्ठपे ।
यत्रावापि सुरारिहा गिरिधरः पौत्रो गुणैकाकरः
क्षुण्णाहारतया प्रसिद्धमवनौ तन्मे तडागं गतिः ॥६०॥

(क्रमशः)

अनुवाद—

जो उग्र मान वृन्दा आदि प्रिय दूतियोंके विविध प्रकारकी खुशामदभरी मीठी-मीठी वाणियोंसे भी प्रशमित नहीं होता, जिस मानको मधुमङ्गल आदि सखा भी नानाप्रकारके परिहासपूर्ण वचनोंद्वारा उतारनेमें समर्थ नहीं होते, दूसरी-दूसरी सखियाँ भी क्रोध आदि प्रकाश करके भी जिस मानको दूर नहीं कर पातीं और तो क्या स्वयं कृष्ण भी (मानिनी श्रीराधिकाके) श्रीचरणकमलोंमें बार-बार प्रणत होकर भी जिस मानको (तनिक भी) शान्त नहीं कर पाते, श्रीमती राधिकाके उस अत्युग्र मानको जो फुत्कारमात्रसे अनायास ही प्रशमित कर देती हैं, उन परम सौभाग्यवती सखी-स्वरूपा बंशीको मैं सदा-सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥४९॥

जो मुरलीके नादसे प्रफुल्लित होकर श्रीराधा-कुण्डके तटवर्ती निकुंजके द्वार पर अपने मनोहर पंखोंको फैलाकर नृत्योत्सवका विस्तार करते हुए

कुञ्जबिहारी श्रीश्रीराधाकृष्णको अतिशय आनन्दित कर रहे हैं, उन ताण्डविक नामक श्रेष्ठ मयूरका स्मरण करके मैं अतिशय उत्कंठाके साथ उनका दर्शन करना चाहता हूँ ॥५०॥

श्रीमुरारिने गोष्ठरक्षामें अतिशय उत्सुक होकर प्रणयके साथ अपने उदार हस्तकमलके ऊपर एक सप्ताह तक धारण करके जिनकी मान-मर्यादाको बढ़ाया है, श्रीराधाकृष्णके विलास-विगलित कुंकुमरागसे जिनकी गुहाएँ रंजित हो रही हैं और जिनकी शिलाएँ श्रीराधाकृष्णके रत्नमय शय्या हैं, वे श्रीगोवर्द्धन मेरी रक्षा करें ॥५१॥

जो कदम्ब, चम्पक, श्रेष्ठ नवीन अशोक, आम, नागकेशर, बकुल, लवङ्गलता माधवीलता आदि पुष्पित वृक्ष और लताओंसे आवृत हुआ परम मनोरम लगता है, तथा जो श्रीराधामाधवके प्रियकुण्ड—श्रीराधाकुण्ड और श्रीश्यामकुण्डके मिलन स्थलमें—मध्यप्रदेशमें स्थित है, श्रीराधामाधवके उस केलि-प्रियस्थल नामक रासस्थलीका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥५२॥

अन्यान्य कृष्ण-लीलास्थलियोंकी तो बात ही क्या, परम रमणीय वृन्दाविपिन परमशोभाशाली श्रीगोवर्द्धन और परम रसमयी रासस्थली भी जिसके अंश या लवमात्रके समान नहीं हैं, मुकुन्दके प्राणोंसे भी अधिक प्रियतमा श्रीमती राधिकाकी भाँति ही परमप्रिय उन श्रीराधाकुण्ड का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥५३॥

नाना प्रकारके रत्न सुवर्ण और मुक्तासमूह द्वारा सुन्दर रूपसे रचित जिसके विशाल मण्डपमें वे नवदम्पति—श्रीश्रीराधाकृष्ण रतिक्रीड़ाके विषयमें रतिपति कन्दर्पको अपना मन्त्री नियुक्त कर—उसे अतिशय तुच्छ बनाकर परमानन्दमें विभोर होकर जहाँ कन्दर्प राज्यकी चर्चा करते हैं अर्थात् काम-क्रीड़ा करते हैं, श्रीराधाकुण्डके तट-स्थित उस समुज्ज्वल महाकुंजका मैं निरन्तर भजन करता हूँ ॥५४॥

कुञ्जका वर्णन करते-करते हृदयमें श्रीश्रीराधाकृष्णकी रूप-स्फुरणा होनेपर उसका वर्णन कर रहे हैं—अहो आश्चर्य है ! जो प्रीतिवशतः अपनी-अपनी कान्तिके द्वारा एक-दूसरेके हृदय-मुकुरमें प्रतिबिम्बित होकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं, विधाताने सौभाग्यसे जिनको अतिशय सुन्दर रूपमें रचा है, जो युगल-रूप त्रैलोक्य लक्ष्मीके आस्पद स्वरूप हैं तथा जिन्होंने अनुरागके वशीभूत होकर परमानन्दसे परस्परके रूपको धारण कर रखे हैं, उन अति प्रियतम गौर-श्याम रूपोंका (श्रीश्रीराधाकृष्ण का) मैं कब भजन करूँगा ? ॥५५॥

नेत्राञ्चल अर्थात् कटाक्षपात या वस्त्राञ्चलका अतिशय संचालन, बाहु-मूलका भावपूर्ण संचालन अथवा तैलमर्दन आदिके समय बाहु-मूलका स्तनके समीप किंचित मन्द हास्यके साथ संचालन, स्मित हास्य-रस, अधर-सुधाका पान, चुम्बन और दृढ़ आलिङ्गन—इन सब श्रीकृष्णके अभिलषित महोपचारोंके द्वारा प्रीतिपूर्वक महारसिकजन उन नवीन युवा-युगलका जो भजन करते हैं अर्थात् उक्त प्रकारसे जिस शृङ्गार विलासका मन-ही-मन स्मरण करते हैं, उस उज्ज्वल महाराजकी अर्थात्

दिव्य-शृङ्गार रसराजकी मैं तन-मन-वचनसे सदैव वन्दना करता हूँ ॥५६॥

मैं श्रीराधामाधवकी उस नवीन वयःसन्धिका (पौगण्ड और कैशोरके संयोगका) भजन करता हूँ, जिसमें दोनोंके नेत्रोंमें दीर्घता, अपांगमें कुटिलता, स्तन और वक्षःस्थलमें स्थूलता, वाणीमें मधुर वक्रता, नितम्बमें विशालता और सर्वाङ्गमें अपूर्व माधुरी—ये सब अलौकिक भाव-समूह पूर्णरूपसे प्रकाशित हो पड़ते हैं ॥५७॥

पुष्पके पूर्ण विकशित होनेपर—परिपक्वावस्थामें जिस प्रकार उससे अपने आप मकरन्द झरने लगता है, उसी प्रकार दुष्ट अरिष्टासुरके वधके समय श्रीकृष्णके चरणकमलोंसे अपने-आप ही जो (मकरन्द स्वरूप निर्झरित होकर कुण्डरूपमें) उत्पन्न हुआ है और श्रीमतीराधिकाने स्नान आदि की सुविधाके लिये बड़े प्रेमके साथ जिसे सोपानोंके द्वारा परिरंजित किया है, और मेरी प्रियतमा श्रीराधाका यह कुण्ड अर्थात् श्रीराधाकुण्ड अतिप्रिय है—ऐसा जान कर जो श्रीराधाकुण्डका सदैव आलिङ्गन करता है, उस श्यामसे अभिन्न श्यामकुण्डका मैं नित्य भजन करता हूँ ॥५८॥

जो मधुपोंके झंकारसे ललित कदम्ब वृक्षोंसे परिव्याप्त हैं, कमलनयनी व्रजाङ्गनाएँ सुनिर्मल जल भरनेके बहाने अति प्रीतिके साथ जिस स्थान पर बारम्बार आगमन कर श्रीगोपेन्द्रनन्दनका दर्शन करती हैं, वे पावन-सरोवर मेरी रक्षा करें अर्थात् अपने तट पर निवास करनेमें मेरी सारी विघ्न-बाधाओंको दूर करें, जिससे मैं श्रीश्रीराधाकृष्ण-लीला-माधुरीका उनकी कृपासे अनुभव कर सकूँ ॥५९॥

जिस स्थल पर पितामह पर्जन्यने अपने आत्मज अपुत्रक व्रजराज नन्दकी संतानकी कामनासे अनशन-व्रत अवलम्बनपूर्वक भक्तिके साथ श्रीनारायण भगवानकी नित्य आराधना करके श्रीनन्दमें गुणोंके एकमात्र आकर स्वरूप, असुरारि गिरिधर श्रीकृष्ण को पौत्ररूपमें बोया था, पृथ्वीमें क्षुण्णाहारके नाम से प्रसिद्ध वह सरोवर मेरी गति हो ॥६०॥

(क्रमशः)

शक्ति-संचार

भगवान् सर्वशक्तिमान हैं। वे जिस वस्तुमें जिस शक्तिका संचार करते हैं, उस शक्तिके केवल कणभर बल प्राप्त कर वह वस्तु उसी शक्तिके द्वारा उन सर्वशक्तिमान भगवानकी सेवा करनेमें समर्थ होती है। भगवान ही शक्तिके मूल उद्गमस्थान या मूल आश्रयस्थल हैं। शक्तिमान होने पर भी वे शक्तिसे भिन्न और अभिन्न हैं। अलंकार शास्त्रमें शक्तिमान को 'विषय' और शक्तिको 'आश्रय' कहा गया है। विषय और आश्रयमें जो विशेष है, उसीके द्वारा शक्तिमानसे शक्ति भिन्न है। पुनः शक्तिरहित शक्ति-

मान-शब्दका अधिष्ठान ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेयकी तीनों वृत्तियोंसे अगम्य है। त्रिविध गुणोंकी साम्यावस्थामें यह प्राकृत दृश्य जगत विज्ञाताके अभावमें प्रकृतिमें ही लीन हो जाता है। और किसी-किसी के मतानुसार पूर्णज्ञान हो जाने पर ही वह निर्वाण को प्राप्त हो जाता है। उस समय कौन किसको किस वृत्तिसे जान सकेगा ? ऐसा निर्विशिष्ट भाव केवल ज्ञाननिष्ठ सम्प्रदायमें ही आदर पाता है। इसीलिये श्रीजीव गोस्वामीका कहना यह है कि ब्रह्म विशेष्यनिष्ठ हैं,परमात्मा विशेषण-निष्ठ हैं तथा भगवान विशिष्टनिष्ठ हैं। विशिष्ट-निष्ठके अन्तरालमें हम तत्त्ववस्तुको देखने जाकर तत्त्ववस्तुको शक्तिमान और विशेष-समूहको 'शक्ति' कहते हैं। अप्रकटित विशेषसमूह विशेष्यके ही विशेषण हैं। जड़ीय-विशेष परमात्माके बाह्य विशेषण हैं तथा चिद्-विशेषसमूह उनके अन्तविशेषण हैं। इन विशेषणों से युक्त होनेपर भी केवलमात्र पूर्ण चिद्विशेष-विलासका परिचय न देनेपर वे भगवत्प्रतीतिके शुद्धत्व, पूर्णत्व, मुक्तत्व और नित्यत्वसे पृथक हैं। भगवानकी शक्ति अखण्ड और सम्यक् होती है। परमात्मामें जो शक्ति लक्षित होती है, वह खण्डित होती है तथा ब्रह्मकी शक्ति केवल ज्ञानगम्य और असम्यक् होती है।

वेदमें उसी शक्तिको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है—सम्वित् या ज्ञान-शक्ति, सन्धिनी या बलशक्ति और ह्लादिनी या क्रिया शक्ति। गोलोक धाममें जिस विग्रहमें ये तीनों शक्तियाँ स्वाभाविक रूपमें (पृथक् रूपमें) परिलक्षित नहीं होतीं, वही विग्रह अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दन हैं। गोलोकमें जिस विग्रहमें ज्ञान और क्रिया शक्ति अलक्षित होती हैं—वह विग्रह तत्त्व-प्रकाश बलदेव हैं। तथा गोलोकमें जिस विग्रहमें स्वयं-रूप ज्ञान और तत्त्वप्रकाश—बल लक्षित नहीं होते, वहाँ क्रिया या ह्लादिनी विराजमान होती हैं।

अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दनकी अंगकान्ति ही ब्रह्म हैं तथा अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दनका अंशवैभव—परमात्मा हैं। भगवान ही अंगी हैं। अंगी भगवानकी बहिरंगा शक्तिको माया कहते हैं। अन्तरंगा शक्ति—तद्रूपवैभव है और तटस्था शक्ति—जीव है।

तत्त्व-प्रकाश बलदेवकी चित्शक्ति जीव-जगत है; अचित शक्ति-जड़-जगत है तथा स्वयं प्रकाश—ईश्वर हैं।

महाभावस्वरूपिणी वार्षभानवी श्रीमतीराधिकाजी—ह्लादिनी हैं, परव्योममें विराजित लक्ष्मीगण तथा हरिविमुखिनी शची और उमा आदि देवियाँ उनकी कायव्यूह हैं।

बहिरंगा मायाशक्ति बद्धजीवकी कर्मभूमिकी रचना करती है। अणु चित्शक्ति परिणत असंख्य अणुचित् जीवसमूह तद्रूपवैभवको विस्मृत होकर उस कर्मभूमिमें भटकते फिरते हैं। भगवान सर्वशक्तिमान और परम दयालु होने पर भी वे जीवों की स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप नहीं करते। यदि वे ऐसा करें तो जीव चिन्मय और स्वतंत्र नहीं रह कर नश्वर जड़ पदार्थ हो जायगा। इसी स्वतन्त्रताका अपव्यवहार करके जीव मायाके बन्धनमें पड़ कर त्रितापसे दग्ध होता है तथा इसी स्वतंत्रताके सद्-

व्यवहारसे जीव भगवन्मुखी सेवाके सहारे अपने नित्य-स्वभावमें प्रतिष्ठित होता है।

भगवान् गौरहरि व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरसे अभिन्न होकर भी जगतमें श्रीगुरुदेवकी लीलाका अभिनय करनेके लिये अवतरण करते हैं। इन्होंने अपनी लीलामें यह स्पष्ट किया है कि बद्धजीव पुनः अपने शुद्ध स्वरूपको प्राप्त कर सकता है।

जिस समय भगवान श्रीगौरहरि प्रयागमें श्रीरूप गोस्वामी पर कृपा करनेके लिये पधारे थे, उस समय श्रीरूप गोस्वामीने उनकी इस प्रकार वन्दना की थी—हे 'श्रीकृष्ण चैतन्य' नामधारी, गौररूप-धारी आप महावदान्य हैं। आप कृष्ण-प्रेम प्रदान करनेके लिये जगतमें अवतीर्ण हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। तत्पश्चात् अखिल भुवन पति, ब्रह्माण्डों और वैकुण्ठ समूहोंके पति, सारे गुरुओंके गुरु, जगद्गुरु श्रीचैतन्यदेवने श्रीरूप गोस्वामीमें शक्ति संचार कर दस दिनों तक उनको शुद्धा भक्ति का उपदेश किया। श्रीरूपगोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभु जीके उपदेशोंका बड़ी उत्कंठा और श्रद्धापूर्वक श्रवण किया। उनके उस शुद्ध श्रवणमें कहीं भी कुतर्क आदिको नहीं देखा जाता। जिस प्रकार श्रद्धालु मुनिजन मुक्ति और विषय भोगोंकी कामनाओंसे सर्वथा रहित होकर श्रीगुरुदेवके मुखारविन्दसे निकले हुए आम्नाय-वाक्योंका श्रद्धापूर्वक श्रवण कर प्रेमाञ्जनच्छुरित सेवामयी दृष्टिसे परतत्त्वका दर्शन करते हैं, उसी प्रकार श्रीरूप गोस्वामीने भी श्रीमन्महाप्रभुके उपदिष्ट विषयोंको ग्रहण किया था—

"तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया॥"

श्रीभगवानकी मायाशक्ति जिस समय जीवको भगवद् विमुख देखती है, उसी समय वह जीवके स्वरूप ज्ञानको आच्छादित करके मायिक जगत्में डाल देती है। उस समय जीव अपनेको त्रिगुणात्मक मायिक बद्ध जीव मानने लगता है। परन्तु जिस समय भगवानकी अन्तरंगा शक्ति जीवके तटस्थ धर्ममें सञ्चरित होकर जीवको कर्मफलोंकी नश्वरता और दुखपूर्णता उपलब्धि करा कर उसे भगवानके प्रति उन्मुख करा देती है, उसी समय भगवान उस पर कृपा करनेके लिये तत्त्वज्ञानके उपदेष्टा गुरुके रूपमें अवतीर्ण होते हैं। ऐसी दशामें वह सौभाग्यशाली जीव गुरु-कृष्णके समीप भगवत् सेवा-प्रवृत्ति लाभ कर नित्य वैकुण्ठ वस्तुके प्रति अप्राकृत श्रद्धाको प्राप्त करता है।

अधोक्षज सेवामें माया शक्तिकी प्रधानता नहीं होती। इन्द्रिय ज्ञानमें ही बहिरंगा मायाशक्ति अपना बल प्रदर्शन कर बद्धजीवको मोहित कर सकती है। जब तक जीव विषयभोगकी कामना नहीं दूर कर देते, तब तक वे गुरु-कृष्णकी कृपा नहीं प्राप्त कर सकते। चिद्विलास-शक्ति संचरित नहीं होनेसे बद्धजीव भ्रमवशतः ब्रह्ममें ही लीन होने की असत् चेष्टाका पोषण करता है।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

———

प्रश्नोत्तर

वैष्णव-तत्त्व

१—वैष्णवताका क्या लक्षण है ?

"वर्णाश्रम-स्वीकार, वर्णाश्रम-त्याग या भेकादि ग्रहण ही वैष्णवता नहीं है। एकमात्र कृष्णभक्ति ही वैष्णवताका लक्षण है। 'वैष्णव' कहकर परिचय देनेके लिए कृष्णभक्ति किस परिमाणमें है, यह देखने की आवश्यकता होती है।"

—'मनुष्य-समाज और वैष्णव धर्म, तृतीय प्रबन्ध' स० तो० २।१२

२—वैष्णवता क्या है ?

"तत्त्व-विचार, भाषाका सामासिक वर्णन और सुन्दररूपसे सज्जीकरणके द्वारा वैष्णव-तत्त्व प्रकाश नहीं पाता। अभिधानमें बताये गये बातोंको यथास्थानमें सजानेसे ही वैष्णवता प्राप्त नहीं हो सकती। श्रीगुरु-चरणाश्रयपूर्वक भजन करते-करते जो रसोदय होता है, उसीका नाम 'वैष्णवता' है।"

—'समालोचना', स० तो० ६।२

३—'वैष्णव', 'वैष्णवतर' और 'वैष्णवतम' कौन है ?

'जब तक नामापराध रहता है, तब तक शुद्ध-नाम नहीं होता। कभी-कभी अपराधशून्य नामाभास होता है। नामाभासके फलसे सभी पाप क्षय होते हैं। पापका क्षय होने पर चित्त निर्मल होता है। चित्त निर्मल होनेसे नामापराध होनेका अवसर नहीं होता। यदा-कदा भी निरपराध होकर नाम करने वाले वैष्णव हैं। उस तरह निरन्तर नाम होने पर वे 'वैष्णवतर' हैं। ह्लादिनी शक्तिके उदय होने पर वे 'वैष्णवतम' हैं।"

—'वैष्णवसेवा', स० तो० ६।१

४—श्रीचैतन्यचरणानुगत 'वैष्णव', 'वैष्णवतर', और वैष्णवतम'-इनमें क्या वैशिष्ट्य है ?

"शुद्धनामपरायण वैष्णव ही श्रीचैतन्यचरणानुगत वैष्णव हैं। बीच-बीचमें सान्तर नामानुशीलन करने वाले ही 'वैष्णव' हैं। निरन्तर नामानुशीलन करने वाले ही 'वैष्णवतर' हैं। और जिनके दर्शन से ही दूसरेके मुखसे शुद्धनाम निकले, वे 'वैष्णवतम' हैं। इन सभी साधुओंका सङ्ग करना कर्त्तव्य है।"

—श्रीम० शि० २० म प०

५—कौन कितना वैष्णव हैं ?

"जिस परिमाणमें जिनकी कृष्णनाममें रति है, उसी परिमाणमें वे वैष्णव हैं।"

—'साधु निन्दा', ह० चि०

६—भगवानके प्रति अन्तर्मुख व्यक्तियोंमें कनिष्ठ, मध्यम, और उत्तमका भेद कैसा होता है ?

"भगवानके प्रति अन्तर्मुख व्यक्ति कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। कनिष्ठ अन्तर्मुख व्यक्ति अन्य देवताओंको त्याग कर सर्वकाम होकर कृष्णका अर्चन करते हैं, किन्तु

स्व-स्वरूप, कृष्ण-स्वरूप और भक्त-स्वरूपसे अनभिज्ञ होते हैं। मूढ़ होने पर भी अपराधी नहीं होते। इनमें स्वनिष्ठ-प्रवृत्ति होती है। इसलिए शुद्ध-वैष्णव न होने पर भी 'वैष्णवप्राय' हैं। मध्यम अन्तर्मुख शुद्ध-वैष्णव और परिनिष्ठित होते हैं। उत्तम अन्तर्मुखकी तो बात ही नहीं है। वे निरपेक्ष होते हैं। नाम-नामीमें अभेद बुद्धिके बिना कोई कदापि अन्तर्मुख नहीं हो सकता। केवल अन्तर्मुख व्यक्तिकी ही भगवानमें अनन्य-श्रद्धा होती है।"

—'भजन-प्रणाली', ह० चि०

७—मध्यम वैष्णवोंका क्या स्वरूप है ?

"मध्यम वैष्णव उत्तम वैष्णवोंके अनुगत एवं कनिष्ठ वैष्णवोंके उपकारक होते हैं।"

—'श्रीमद्गौरांग-समाज' स० तो० १०।१२

८—नाम-भजनकारी कौनसे अधिकारी हैं ?

"नाम-भजनकारी व्यक्ति प्रारम्भसे ही मध्यमाधिकारी हैं।"

—चै० शि० ६।४

९—किस धर्मके तारतम्यसे वैष्णवताका तारतम्य निरूपित होती है ?

"श्रीमन्महाप्रभुके शिक्षित धर्ममें दो बातें मुख्य हैं—'नाममें रुचि' और 'जीवोंके प्रति दया'। जिस व्यक्तिमें जिस परिमाणमें ये दोनों गुण होते हैं, वह उसी परिमाणमें वैष्णव है। अन्य सद्गुण लाभ की चेष्टा आवश्यक नहीं है। भक्तोंमें सभी गुण स्वतः ही उदित होते हैं।"

—चै० शि० १।७

१०—किस समय मनुष्य 'वैष्णव' पद वाच्य होते हैं ?

"वैष्णवोंकी कृपासे जब कनिष्ठत्वका लोप होकर मध्यमाधिकारका उदय होता है, तब वे 'वैष्णव' पदवाच्य होते हैं। एवं जीवोंके प्रति उनके हृदयमें दया उदित होती है।"

—'जीवमें दया', स० तो० ४।८

११—वैष्णवताके तारतम्य निरूपणमें एकमात्र मापदण्ड क्या है ?

"गृहत्यागी वैष्णव यह न सोचें कि वे गृहस्थ वैष्णवकी अपेक्षा सम्मानमें श्रेष्ठ हैं। वैष्णव-सम्मानमें जो तारतम्य है, वह केवल उत्तम वैष्णव और मध्यम वैष्णवके भेद से है—यह जानना चाहिए। गृहस्थमें उत्तम और मध्यम दोनों ही प्रकारके वैष्णव होते हैं। गृहत्यागी वैष्णवोंमें भी भेद वर्त्तमान है। गृहत्यागी वैष्णवोंकी यही विशेषता है कि वे स्त्री-संग और अर्थ-लालसा परित्याग-पूर्वक अनेक प्रकारके शारीरिक सुखोंका त्याग किये हैं। गृहस्थ वैष्णवोंकी भी अपनी विशेषता है। कई व्यक्ति बड़ी कठिनाईसे अर्थ संचय कर कृष्णकी सेवा करते हुए गृहस्थ और गृहत्यागी दोनों प्रकारके वैष्णवोंकी सेवा करते हैं। वस्तुतः वैष्णव गृहस्थ हों या गृहत्यागी, भक्ति समृद्धि ही उनके समस्त सम्मानका कारण है। जिन्हें जिस परिमाणमें भक्ति-सम्पत्ति प्राप्त हुई है, उनका उसी परिमाणमें 'वैष्णव' समझकर सम्मान करना चाहिए। अन्य किसी कारणसे वैष्णवोंका तारतम्य नहीं है।"

—'वैष्णवसेवा', स० तो० ५।११

१२—वैष्णवता क्या वर्ण, आश्रम, उच्चकुलमें जन्म, ऐश्वर्य, पाण्डित्य और रूप आदिके ऊपर निर्भर होती है ?

"जिनमें भक्ति है, वे गृहस्थ हों, संन्यासी हों धनी या निर्धन हों, पण्डित या मूर्ख हों, दुर्बल या बलवान हों,—वैष्णव हैं।"

—'वैष्णवोंका व्यवहार दुःख' स० तो० १०।२

१३—वैष्णवमें क्या-क्या गुण होते हैं, उनका स्वरूप लक्षण क्या है ?

"वैष्णवोंमें छब्बीस गुण होते हैं। इन गुणोंमें कृष्णैकशरणता गुण ही वैष्णवोंका स्वरूप लक्षण है।"

—"वैष्णवोंका स्वरूप और तटस्थ लक्षण' स० तो० ४।१

१४—स्वरूप-लक्षणमें क्या तटस्थ लक्षणका अभाव होता है ? अनन्य कृष्णशरण व्यक्तिमें व्यतिक्रम देखनेसे क्या जानना चाहिए ?

"अनन्य कृष्णैकशरणता ही भक्तिका स्वरूप-लक्षण है। वह लक्षण जिनमें हो, उनमें तटस्थ लक्षण अवश्य होंगे। किन्तु यदि किसी अनन्य कृष्णशरण व्यक्तिमें किसी अंशमें तटस्थ लक्षण पूर्ण उदित न होनेके कारण कुछ दुराचार जैसा लक्षित होता हो, तथापि वे साधु ही हैं।"

—'साधुनिन्दा', ह० चि०

१५—वैष्णवताके तारतम्यका एकमात्र क्या परिचय है ?

"जहाँ जिस परिमाणमें भक्तिका उदय हुआ है, वहाँ उसी परिमाणमें पच्चीस प्रकारके तटस्थ गुण अवश्य ही उदित होंगे। भक्ति जितनी ही वृद्धि होगी, इन सभी गुणों की भी उतनी ही वृद्धि होगी। जहाँ इन सभी तटस्थ गुणोंका अत्यन्त अभाव हो, वहाँ भक्तिका भी अत्यन्त अभाव ही जानना चाहिए। यही लक्षण वैष्णव-तारतम्यका एकमात्र हेतु है।"

—'वैष्णवोंका स्वरूप और तटस्थ लक्षण', स० तो० ४।१

१६—रुचिके भेदके अनुसार भक्तका प्रकार-भेद और तारतम्य क्या है ?

रुचि अनुसार भक्त तीन प्रकारके हैं—प्रचार-प्रधान भक्त, आचार-प्रधान भक्त और आचार-प्रचार सम्पन्न भक्त। उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ विचार करने पर आचार-प्रचार-सम्पन्न भक्त ही सर्वश्रेष्ठ हैं, केवल आचार-प्रधान भक्त मध्यम हैं और केवल प्रचार-प्रधान भक्त कनिष्ठ हैं।"

—'आचार और प्रचार', स० तो० ४।२

१७—उत्तम, मध्यम और कोमल-श्रद्धाका तारतम्य विचार क्या है ?

"शास्त्र युक्तिमें सुनिपुण और दृढ़ श्रद्धावाले भक्तिके उत्तमाधिकारी हैं। जो शास्त्र युक्तिमें विशेष निपुण नहीं हैं, अथच दृढ़श्रद्धालु हैं, वे भक्तिके मध्यमाधिकारी हैं। जो परम्परागतिसे कुछ श्रद्धा लाभ किये हैं, किन्तु शास्त्र युक्तिका आश्रय नहीं किये हैं, वे कोमल-श्रद्ध हैं। साधुसंग होनेसे क्रमशः

शास्त्रार्थके प्रति विश्वास होने पर वे भी प्रौढ़-श्रद्ध हो सकते हैं।"

—'श्रद्धा और शरणागति', स० तो० ४।६

१८—प्राकृत-भक्तोंका क्या स्वरूप है ?

'जो व्यक्ति वंशपरम्परासे कुलगुरुसे विष्णु मंत्रमें दीक्षित होकर लौकिक श्रद्धापूर्वक उस विष्णु मंत्र द्वारा श्रीमूर्त्तिका अर्चन करते हैं, वे कनिष्ठ वैष्णव हैं, शुद्ध भक्त नहीं हैं।'

(जै. ध. ८ म. अ)

(क्रमशः)

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ—१३)

श्रीकृष्णकी विभुताके बारेमें कहा गया है—

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापर बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥
(भा० १०।६।१३)

नवनीत चौर्यके अपराधमें श्रीव्रजेश्वरी यशोदा द्वारा श्रीकृष्णका बन्धन करने पर श्रीशुकदेवजीके वचन हैं—जिनका भीतर नहीं है, बाहर नहीं है, पूर्व नहीं है और पर नहीं है, वे स्वयं जगतके पूर्व-पर, अन्तर-बाहर और स्वयं ही जगतके स्वरूप हैं।

श्रीकृष्णके स्वप्रकाशत्वके बारेमें ब्रह्माजीके वचन—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः॥
(भा० १०।१४।२)

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे भगवन्, आपने मेरे प्रति अनुग्रह करनेके लिए जो देववपु प्रकाश किया है, वह पाञ्चभौतिक नहीं है, वरं विशुद्ध सत्त्वात्मक है। यह रूप स्वेच्छामय अर्थात् अपनी इच्छानुसार प्रकाशित होते हैं। मैं (ब्रह्मा) या अन्य कोई जब इस रूपकी महिमाको जाननेमें असमर्थ हैं, तब केवल आत्मसुखानुभूतिरूप मूलावतारी आपके इस रूपकी महिमाको निरुद्ध मन द्वारा कोई भी नहीं जान सकते। नराकृतिधारी आपने इस समय बालक-बछड़े आदि अंश समूहद्वारा जिन सभी नारायणरूपका दर्शन करवाया है, उनमेंसे जिस किसी एक देवरूपकी महिमा ही जब जाना नहीं जा सकता, तब उनके भी अंशी रूप साक्षात् आपकी महिमाको कोई नहीं जान सकता, इसमें कहना ही क्या है ? 'मदनुग्रहस्य' पद 'वपुषः' पद का विशेषण है। उसका अर्थ है—मेरे प्रति जिसके द्वारा अनुग्रह प्रकाश किया गया है अर्थात् जिस रूपका दर्शन कर आपकी महिमा अवगत हुआ है,

वही वपुकी। आप कैसे हैं ?—आप आत्मसुखानुभूति स्वरूप हैं। आपके द्वारा जिन्हें सुखानुभव होता है और जिनका आनन्द उनको छोड़कर और कोई अनुभव नहीं कर सकते, ऐसा परमानन्दमय आपका स्वरूप है। इसलिए वे स्वप्रकाश हैं अर्थात् उनका तत्त्व उनको छोड़कर और कोई नहीं जानता, अतएव कोई उन्हें प्रकाश नहीं कर सकता। उनके स्वयंरूपत्वके बारेमें कहा गया है—

सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम्।
स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः॥

(भा० १०।१२।३९)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे अङ्ग ! हे प्रिय परीक्षित् ! जिनकी श्रीमूर्तिकी केवल मनोमयी प्रतिकृति बलपूर्वक एकबार मात्र अन्तरमें ध्यान करने पर प्रह्लादादि भक्तोंको भागवती गति प्रदान की थी, वह परमेश्वर श्रीकृष्ण अघासुरके भीतर प्रवेश कर उसे भागवती गति देंगे, इसमें आश्चर्यका विषय क्या है ? उनका देह-देही भेद नहीं है। यह रूप सर्वदा मायातीत है; इस रूपके प्रभावसे दूसरे व्यक्तियोंका संसार बन्धन नाश होता है। इसलिए उनका रूप स्वयं-सिद्ध रूप है। उसे कोई सृष्टि नहीं कर सकता और न कोई उसे रूपान्तरित कर सकता है। अतएव स्वप्रकाश कहकर नराकार सच्चिदानन्दविग्रह श्रीकृष्णका परमब्रह्मत्व दिखलाया गया है—

अद्यैव त्वद्दृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद् वत्साः समस्ता अपि।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते॥

(भा० १०।१४।६८)

ब्रह्माजीने श्रीकृष्णसे कहा—आपने आज मुझे इस विश्वका मायामयत्व दिखलाया। पहले एकमात्र आप ही थे, उसके पश्चात् आप समस्त व्रजसखा और समस्त वत्सरूपसे प्रकटित हुए। उसके पश्चात् सभी चतुर्भुज होकर अखिल तत्त्वके साथ मेरे द्वारा उपासित हुए और प्रत्येक मूर्त्तिका पृथक्-पृथक् ब्रह्माण्ड हुआ। इस समय अपरिमित 'अद्वय ब्रह्म' केवल आप ही वर्त्तमान हैं। इस श्लोकमें 'अद्वय ब्रह्म' कहा गया है। अद्वय ब्रह्म स्वप्रकाश वस्तु है। उन्हें प्रकाश कर सकें, ऐसी कोई द्वितीय वस्तु नहीं है, इसलिए वे अपने द्वारा आप ही प्रकाशित हैं। ब्रह्माजीने कृष्णके नराकृति स्वरूपको ही 'अद्वय ब्रह्म' कह कर निर्देश किया।

विष्णुपुराणमें भी कहा गया है—

यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परंब्रह्म नराकृतिः॥

जिस वंशमें नराकृति परमब्रह्म कृष्णाख्य पुरुष अवतीर्ण हुए हैं, मनुष्य उस यदुवंशकी कथा सुनकर सर्वपापसे मुक्त होता है।

इन सभी प्रमाणोंके द्वारा श्रीकृष्णका नराकार निश्चित हुआ। वे कभी चतुर्भुज और कभी द्विभुज

होने पर भी द्विभुजका ही कृष्णत्व मुख्य है अर्थात् द्विभुज श्रीकृष्ण ही सर्वावतारी हैं। चतुर्भुज रूपमें भी अतिरिक्त दो हाथोंको छोड़कर मनुष्य लक्षण प्रकाश पानेके कारण उसमें भी श्रीकृष्णत्व है। तब यहाँ उसे गौण जानना चाहिए। चतुर्भुज रूपमें नराकृतिका बाहुल्य होनेके कारण अर्जुनने कहा—"तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्व मूर्त्ते:"—हे सहस्रबाहो! हे विश्वमूर्त्ते! उस चतुर्भुज रूपको पुनः प्रकाश कीजिए। "दृष्टेत्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन। इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।" अर्थात् हे जनार्दन! तुम्हारे इस शान्त मनुष्य-रूपका दर्शन कर मैं प्रकृतिस्थ हुआ।

यही श्रीकृष्ण-मूर्त्ति परम तत्त्ववस्तु हैं, यह निम्नलिखित श्लोकसे जाना जाता है—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः
शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥
(भा० १०।४३।१७)

जब श्रीकृष्णने अपने अग्रज (बलराम) के सहित रङ्गस्थलमें प्रवेश किया, तब वे मल्लोंके लिए अशनि (वज्र), मनुष्योंके लिये नरश्रेष्ठ, युवतियोंके लिए मूर्त्तिमान कन्दर्प (कामदेव) गोपोंके लिए स्वजन, असत् नरपतियोंके लिए शासनकर्त्ता, अपने माता-पिताके लिए शिशु, भोजराज कंसके लिए साक्षात् मृत्यु, अविद्वज्जनों (मूढ़ व्यक्तियों) के लिए विराट् स्वरूप, योगियोंके लिए परम तत्त्व एवं वृष्णियों (यादवों) के लिए परम देवतारूपसे प्रकाशित हुए। श्रीकृष्ण ही अखिल-रसामृतमूर्त्ति हैं, यह इस श्लोकसे जाना जाता है। उक्त श्लोकमें योगियोंके शान्त, वृष्णियोंके दास्य, गोपोंके सख्य, माता-पिताका वात्सल्य, नारियोंके मधुर एवं कुवलयापीड़ हाथीको विनाश करनेके बाद गजरक्त-मुक्ता-दन्तादिके द्वारा विशेष शोभाशाली होनेके कारण सखाओंके हास्य, मल्लोंके रौद्र, पिता-माताओंका मल्लोंके दौरात्म्य-आशंकासे करुण, असत् नरपतियोंके शास्ता होनेके कारण वीर, मनुष्योंमें लोकोत्तर रूप दर्शनके कारण अद्भुत और अविद्वान मनुष्योंकी प्रतीतिमें विराट् अर्थात् प्राकृत देहविशिष्ट प्रतीतिके कारण ही बीभत्स-रसके विषय हुए थे।

पद्मपुराणमें नराकार-विग्रहका परम कारणत्व निरूपित हुआ है—

दृष्ट्वातिहृदा ह्यभवं सर्वभूषण-भूषणम्।
गोपालमबलासङ्गमुदित वेणुनादितम्॥
ततो मामाह भगवान् वृन्दावनचरः स्मरन्।
यदिदं मे त्वया दृष्टं रूपं दिव्यं सनातनम्॥
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
पूर्णं पद्मपलाशाक्षं नातः परतरं मम॥
इदमेव वदन्त्येते वेदाः कारण कारणम्॥

श्रीव्यासदेवने कहा—अबलाओं (गोपियों) के सङ्ग आनन्द करते हुए, वेणुवादनतत्पर, सर्व-भूषणोंके भूषण-स्वरूप गोपालको देखकर मैं अत्यन्त

प्रसन्न हुआ। उसके पश्चात् वृन्दावनमें विचरणशील भगवानने हँस कर मुझसे कहा—तुमने जो देखा, वही मेरा दिव्य सनातन रूप है। वह निष्कल है, निष्क्रिय है, शान्त है और सच्चिदानन्दविग्रह तथा पद्मपलाश लोचनयुक्त है। इस रूपसे श्रेष्ठतर और कोई दूसरा स्वरूप नहीं है। सभी वेदोंमें इसी रूपको सब कारणोंका कारण बतलाया गया है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

गौहत्या भारतसे बन्द करो

गौहत्या भारतसे बन्द करो।

अमल पवित्र अमर भूतलसे गौहत्या बन्द करो।
गोबंश नाश यदि रुका नहीं तो गौकी आहें फूट पड़ेगी।
भारतके कोने-कोनेमें आधि-व्याधिकी नींव धरेगी॥
भू पर अति उत्पात मचेगा नक्षत्र निकट टकरायेंगे।
शेष फणावलि डोलेगी अब्धि नदीनद विचलायेंगे॥
आकाश अनलको बरसेगा पर्वतमाला चालित होगी।
पशु पक्षी मानव हृदयोंमें नित दुःख व्यथा पालित होगी॥
जो भारतकी पूत मात है कोटि देव आश्रय स्थान है।
देव-दनुज अरु नर पशुओंमें सन्तत इसका अधिक मान है॥
सूखे तृण चर दुग्ध पिलाती प्रत्युपकार नहीं है लेती।
गोमय कृषिके हित है देती गोमूत्र औषधि हित है देती॥
सर्वस्व यही भारतका आनन्द यही है भारत का।
जन जनका आराध्य पशु है यही रत्न है भारत का॥
भारत को स्वाधीन देख कर यही हृदयमें सोचा था।
गौ बंश नाश पर रोक लगेगी यही हृदयमें सोचा था॥

पर सब उलटा किया इन्होंने अपने द्वारा नेता होकर ।
अपनी ही माता को कटते देख रहे उनमत होकर ॥
भारत की सरकार इन्हींके दुग्ध अन्नसे प्रतिपालित ।
योग गाय कटनेमें देते यह कलंक होगा कब क्षालित ॥
इस स्वतन्त्र भारत में देखे गो माताका बध नित होते ।
इससे बढ़कर पाप अन्य क्या होगा निज मानस जोते ॥
कोटि कोटि मानव चीत्कारें हाय नहीं क्यों सुनी जा रही ।
लखना सुनना सभी बन्दकर स्वार्थनीति क्यों गढ़ी जा रही॥
अहो विदेशी बुद्धि नीतिका विष फैला है भूके ऊपर ।
जिसने सभी पूर्वजों ऋषियोंकी मरजाद मिटा दी भूपर ॥
गोभक्त तपस्वी नृप दिलीपके गायोंका सेवास्थल है ।
अतुल प्रेम गोसेवा पूरित यह गुपालका अमरस्थल है ॥
गान्धी तिलक मदनमोहनकी अमर भावना गौरक्षा है ।
स्वार्थ छोड़ उनकी पद्धति चल बोलो जन जीवन गोरक्षाहै॥
दोष भरी अति कुटिल भावना अधिक काल क्या टिक सकती है।
आहें सब अङ्गारे बनकर सुलग उठे तब क्या टिक सकती है ॥
हे नाथ जगदाधार प्रभुवर कान दे सुन लीजिये ।
बुद्धि दे अरु ज्ञान दे इनकी विमल मति कीजिये ॥

—बागरोदी कृष्णचन्द्रजी 'शास्त्री', 'साहित्यरत्न'

श्रीमद्भागवतमें माधुर्य भाव

(वर्ष १२ सं. ४-५ पृ. ९३ से आगे)

परमाराध्य रसिक-शिरोमणि, व्रजजन-सर्वस्व, लीला-निकेतन श्रीकृष्णके वियोगमें विप्रलम्भ शृङ्गार (वियोग) का उदय होता है।

विप्रलम्भ शृङ्गारके सम्बन्धमें कविराज विश्वनाथने निम्न लक्षण उद्धृत किया है—

यत्र तु रति प्रकृष्टा नाभीष्ट मुपैति विप्रलम्भोऽसौ।

जहाँ रति स्थायी भावकी अधिकता होने पर भी प्रियतमके दर्शन न हो, उसे विप्रलम्भ शृङ्गार कहते हैं।

इसके पूर्वराग, मान, प्रवास, करुणके रूपमें चार भेद किये गये हैं। वियोगकी वृद्धि होने पर—

अभिलाषश्चिन्तास्मृति-
गुणकथनोद्वेगसंप्रलापाश्च।
उन्मादोऽथव्याधि जड़तामृ-
तिरित्येतास्मरदशादशव स्युः।

अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, प्रियके गुणोंका कथन, न मिलनेके कारण उद्वेग, प्रलाप, व्याधि, जड़ता, मृति—ये दश स्मरकी दशाएँ क्रमशः उदित होने लगती हैं। मृतिका वर्णन साहित्य ग्रन्थोंमें केवल कादम्बरीके रचयिता बाणभट्टको छोड़कर और किसीने नहीं किया है। साहित्य मनीषियोंने मरणासन्न अवस्थाका ही वर्णन किया है।

जब व्रजबालाएँ अनुरागके रागमें रञ्जित हो अपनेको भूल गईं, रासरसमें उन्मादिनी होकर अप्राकृत पूर्ण पुरुषोत्तमसे प्राकृत जनके समान व्यवहार करने लगीं, उनके मानसमें अभिमानकी वृद्धिने स्थान पाया, तब अभयकारी मदनाशी व्रजेन्द्रनन्दनने कृपा भरित होकर मद निराकरणार्थ अन्तर्हित हो गये।

अपने प्रियतम भगवान्‌को अपने नेत्रोंके समक्ष न देखकर व्रजाङ्गनाएँ विकल हो गईं, हतप्रभ हो गईं, उनके शरीरकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं, उनके प्राण सूख गये, लोचनोंसे जलधारा बहने लगी, वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गईं। उनकी दशा इस प्रकार हो गई जैसे यूथपति गजके अन्तर्हित होने पर वन करिणियोंकी दशा होती है।

गोपियोंके मन तथा सारी इन्द्रियोंमें श्रीकृष्ण ही समाये हुए थे, उन्हींके भावोंमें वे मत्त भी थीं। इससे—

गत्यानुरागस्मित विभ्रमेक्षितै-
मनोरमालापविहारविभ्रमैः।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः॥
भा. १०।३०।२

भगवान्‌की गति, अनुराग, हँसी, विभ्रमयुक्त चञ्चल दृष्टि, मनको रमाने वाली बातचीत, विलास और विभ्रममें गोपियोंके चित्त मस्त हो रहे थे। वे तन्मय हो रही थीं। अतः सब गोपियाँ एक साथ मिलकर नन्दनन्दन कृष्णचन्द्रकी गति एवं अन्य क्रीडाओंका अनुकरण करने लगीं।

तदनन्तर सब गोपियाँ मिलकर ऊँचे स्वरसे प्रियके गुणोंको गाती हुईं उनकी खोजमें पागलोंकी भाँति वन-वनमें घूमने लगीं एवं जो आकाशके समान प्राणियोंके अन्तरमें और बाहरमें अवस्थित हैं, उन्हीं परमपुरुषका पता वनस्पतियोंसे इस प्रकार पूछने लगीं—

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥
कच्चित् कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः ।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥
कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥

भा. १०।३०।५-६-७

हे पीपल ! हे पाकर ! हे गूलर ! प्रेम और हास्यसे पूर्ण कटाक्षोंके द्वारा हमारा चित्त हरण कर नन्दनन्दन चले गये हैं। क्या तुमने उनको देखा है ? हे कुरुबक, अशोक, नाग, पुन्नाग, चम्पक, आदि वृक्षवृन्द ! जिनकी मन्द मुसकान मानिनी महिलाओं के मानका मर्दन करनेवाली है, वही बलरामके भाई कृष्णचन्द्र क्या इधर गये हैं ? हे कल्याणि तुलसी ! हे गोविन्दके चरणोंसे प्यार करने वाली ! अलिकुल मण्डित तुम्हारी माला पहने तुम्हारे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र इधरसे तो नहीं गये हैं ? क्या तुमने उनको इधर जाते देखा है ?

हे मालती ! हे मल्लिके ! हे जुही ! अपने हाथों के स्पर्शसे तुमको प्रसन्न करते हुए क्या माधव इस राहसे गये हैं ? हे रसाल ! हे प्रियाल ! हे पनस ! हे असन ! हे कोविदार ! हे जामुन ! हे मन्दार ! हे बिल्व ! हे बकुल ! हे आम्र ! हे कदम्ब ! हे नीप! पराये उपकारके लिये उत्पन्न यमुना तीरवासी अन्यान्य सब वृक्षों ! क्या तुमने हमारे हृदयरमण प्यारे कृष्णको जाते देखा है ? कृपा कर कृष्णका पता हमको बताओ। उनके बिना हमारा जीवन सूना हो रहा है—

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवांघ्रि-
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद् वा
आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥
अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रै-
स्तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।
कान्ताङ्गसङ्ग कुचकुङ्कुमरञ्जितायाः
कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥
बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो-
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं-
किं वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥

(१० ३०।१०, ११, १२)

अरी पृथ्वी ! तू ने कैसा तप किया है, जो तू केशवके चरण स्पर्शसे आनन्दित हो रही है ! वृक्षों की आवलियाँ द्वारा शरीरका रोमाञ्च प्रकट कर रही है ! तुमको आनन्दका लाभ श्रीकृष्णके चरण स्पर्शसे या वामनावतारके चरण स्पर्शसे या उससे भी पहले वाराह अवतारके शरीर स्पर्शसे हुआ है।

हे हरिण-पत्नियों ! हमारे अच्युत अङ्गप्रत्यङ्ग के द्वारा तुम्हारे नयनोंको तृप्त करते हुए प्रिया-सहित क्या इस स्थानमें आये हैं ? क्योंकि हे सखियों ! इस स्थान पर कुलपति कृष्णके गलेमें पड़ी कुन्दकुसुम मालाकी गन्ध किसी प्रियाको गले

लगानेके कारण उसके कुचकुंकुमकी सुवाससे मिली हुई आ रही है।

हे तरु वृन्द! तुलसीकी गन्धसे अन्ध मोहित भौरोंकी भीड़से घिरे हुए कमलनयन श्रीकृष्णचन्द्र एक हाथमें कमल लिये, दूसरा हाथ किसी प्रियाके कन्धे पर धरे, प्रणयपूर्ण दृष्टिसे तुम्हारे प्रणामका अभिनन्दन करते हुए क्या घूमते-घूमते इधर आये?

इस प्रकार श्रीकृष्ण प्रेममें उन्मत्ता गोपियाँ उन्मत्तोंके समान ही वाक्य कहते-कहते भावावेशमें श्रीकृष्णमय हो, श्रीकृष्णकी विविध क्रीडाओंका अनुकरण करने लगीं।

एक गोपी कृष्ण बनी और एक गोपी पूतना बनकर उसको दूध पिलाने लगी। एक गोपी शकट बनी, और गोपीने कृष्ण बनकर पैरकी ठोकरसे उसे गिरा दिया। एक बालक कृष्ण बनी और दूसरी तृणावर्त असुर बनकर उसको उड़ा ले गई। कोई गोपी कृष्णके समान ही चलकर अपने घुंघरुओंके शब्दोंको सुनने लगी। एक गोपी कृष्ण बनकर गऊओंके स्वरूपको धारण करनेवाली गोपियोंको वंशी बजाकर बुलाने लगी।

श्रीकृष्णमें जिसका मन लगा हुआ है, ऐसी एक गोपी दूसरी गोपीके कन्धे पर हाथ धरके चलती हुई अन्य गोपियोंसे कहने लगी—'मैं कृष्ण हूँ, देखो मेरी कैसी मनोहर चाल है!'

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम्॥
आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहापरां नृप।
दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक्॥
तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम्।
चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा॥
(भा० १०।३०।२०, २१, २२.)

'हे व्रजके निवासियों! मैं तुम्हारी रक्षा करता हूँ। वायु और वर्षासे मत डरो। मैं रक्षाका उपाय करता हूँ।' यों कहकर किसी गोपीने एक हाथसे अपने वस्त्रोंका बना हुआ गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया। एक गोपी दूसरी गोपीके शिरपर चरण धरकर कहने लगी—अरे दुष्ट सर्प! तू यहाँ से चला जा। दुष्टोंको दण्ड देने हो के लिये मेरा अवतार हुआ है। एक गोपी कहने लगी—हे गोपगण! देखो, यह भयानक दावानल वनको भस्म करता चला आ रहा है। तुम अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लो, मैं अनायास ही तुमको इस संकटसे बचा लूँगा।

इस प्रकार श्रीकृष्णकी सभी लीलाओंका क्रम चलता रहा। गोपियाँ भाव तन्मयतामें सब कुछ भूलसी गईं। उनको देहका ध्यान नहीं रहा। उनकी सारी मनोवृत्तियाँ श्रीकृष्णमय बन गईं। और इधर उधर उन्हींको ढूँढ़ती हुई भटकती रहीं। बार-बार वह फिर वृक्षों, लताओं, पक्षियों आदिसे पूछने लगीं। बहुत समयके बाद सहसा उन्हें ध्वजा, पद्म, वज्र, अंकुश, आदिकी रेखाओंसे युक्त भगवान् श्रीकृष्णके चरण चिह्न दीख पड़े। साथ ही पासमें एक स्त्रीके चरण चिह्न भी दिखाई दिये। वे उन चरण चिह्नोंको देखकर अत्यधिक व्याकुल हो गईं और विचार करने लगीं—ये किसके चरण चिह्न है! वह स्त्री निश्चय ही बड़ी भाग्यशालिनी है। उसने हरिकी आराधना कर उनको भलिभाँति सन्तुष्ट किया है। कृष्णकी प्रसन्नता इसीसे जान

पड़ती है कि हम सबको वनमें छोड़कर उसको अपने साथ एकान्तमें ले गये हैं—

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्रिरजोऽरेणवः ।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यधनुत्तये ॥
(भा० १०।३० २९)

हे सखियों ! ये कृष्णके चरणोंकी रेणुएँ परम पवित्र और धन्य हैं । देखो, ब्रह्मा, महेश, लक्ष्मी, देवी पापनाशके लिये इनको शिर पर स्थान देते हैं । हम सब भी इसको शिरपर धरें । ऐसा करनेसे अवश्य ही हमको श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन होंगे ।

कुछ दूर चलनेपर उस प्रेयसीके चरण चिह्न न दीख पड़े । तब गोपियाँ सोचने लगीं—वनभूमि के कठोर कङ्कण काँटोंको देखकर प्रियाको श्रीकृष्ण ने अपने कन्धे पर चढ़ा लिया है । देखो, देखो ! सखि । यहाँ श्रीकृष्ण प्यारीके भारसे थक गये हैं । उन्होंने उसे कहीं उतार कर बिठा दिया है और प्रियतमने फूल बीनकर उसकी वेणी गूँथी है । इस प्रकार परस्परमें चरण आदिके चिह्नोंको दिखाती हुई गोपियाँ वनमें वेसुधकी भाँति घूमने लगीं ।

इधर श्रीकृष्ण जिस गोपीको गोपियोंके बीचसे लेकर अन्तर्हित हुए थे, उसमें कुछ अहंकारकी भावनाकी वृद्धि देखकर उससे भी श्रीकृष्ण अन्तर्हित हो गये ।

वह कामिनी श्रीकृष्णके न दीखने पर अधिक विकल हो गई । उसका सारा अभिमान चूर्ण हो गया । कहने लगी—

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥
(भा० १०।३०।४०)

हे नाथ ! हे रमण ! हे प्रियतम ! हे महा भुजा वाले ! आप कहाँ हो ? मैं दीन दासी हूँ । हे मित्र ! मुझ कृपणा को दर्शन दीजिये ।

गोपियाँ ढूँढती-ढूँढती यहाँ तक आ पहुँची जहाँ उनकी एक प्यारी सखी खड़ी-खड़ी रो रही थी और उन्होंने उसके मान करनेका और अपमानित होने का भी कारण जब सुना, तो वे चकित हो गईं । तदनन्तर जब तक चांदनी रही, तब तक गोपियोंने घूम-घूम कर श्रीकृष्णका वनके प्रत्येक भागमें खोजा । जब अन्धकार हो गया तब सब लौट पड़ीं ।

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥
(भा० १०।३०।४४)

भगवान् श्रीकृष्ण में ही मन लगाये हुए उन्हीं चरित्रकी चर्चा करती हुईं, उनकी ही लीलाओंका अनुकरण करती हुईं, प्रभुमें अपनी आत्माका विनियोग कर व्रजेन्द्रके गुणोंका गान करती हुईं अपनी आत्मा और अपने घरोंको भी भूल गईं—

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ।
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षिताः ॥
(भा० १०।३०।४५)

कृष्णकी भावना करती हुईं गोपियाँ कृष्णके आनेकी चाहसे यमुनातट पर इस प्रकार गाती हुईं प्रार्थना करने लगीं—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रज:
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥
शरदुदाशये साधुजातसत् ।
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका ।
वरद निघ्नतो नेह किं वध: ॥
विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-
दृषभ ते वयं रक्षिता: मुहु: ॥
(भा० १०।३१।१, २, ३,)

हे कान्त ! आपके जन्मसे हमारे व्रजमण्डलको विचित्र वैभव और चमत्कार प्राप्त हुआ है। और लक्ष्मी भी निरन्तर वास करके इसको सुशोभित कर रही हैं।

किन्तु हे प्रियतम ! देखो, हमारे जीवन प्राण आप ही में धरे हुए हैं, अतएव आप दर्शन दीजिये।

हे रमण ! हे अभीष्टप्रद ! तुम्हारे नेत्रोंने शरद्-ऋतुके सुन्दर कमलोंके भीतरी भागकी शोभा हर ली है। हम आपकी बिना मोल की दासी हैं। आप आँखोंसे ओट होकर मनोहर आँखोंकी चोटसे हमको मार गये हैं। क्या वह स्त्री-वध नहीं है ? क्या वह कर्म आपके योग्य है ? अतएव दर्शन देकर हमको जीवनदान दीजिये।

हे श्रेष्ठ ! आपने बारम्बार विष जल जनित मृत्युसे, अघासुरसे, वर्षाके उत्पातसे, आँधी और वज्रपातसे, वत्सासुरसे, मयासुरके पुत्र भौमासुरसे, एवं अन्धाधुँध भयानक संकटोंसे हमारी रक्षा की है। तब इस समय क्यों नहीं इस कष्टसे हमें मुक्त करते ?

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥
(भा० १०।३१।४)

आप केवल यशोदाको और गोपियोंको ही आनन्द देनेवाले नहीं हैं, किन्तु सभीके प्रिय अन्तर्यामी परमात्मा हैं। मित्र ! विश्व की रक्षाके लिये जब ब्रह्माने प्रार्थना की, तब आप यदुवंशमें प्रकट हुए हैं। हम तुम्हारी अनुरक्त दासियाँ हैं। अतएव हमारी कामना पूर्ण कीजिये।

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करी: स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥
प्रणतदेहिनां पापकर्शनं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु न: कृन्धि हृच्छयम् ॥
मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्व न: ॥
(भा० १०।३१।६, ७, ८)

हे व्रजवासियोंकी व्यथा हरनेवाले ! हे वीर ! आपकी मनोहर मन्द मुसकान भक्तोंके गर्वको दूर

करने वाली हैं। हे मित्र ! हम आपकी दासियाँ हैं। कृपा करके हमें अङ्गीकार करो। अपना सुन्दर मुखारविन्द हमको दिखाओ।

पशुओंके पीछे बनमें विचरनेवाले आपके चरणारविन्द प्रणत प्राणियोंके पापोंका नाश करते हैं। हे प्रियवर ! वे ही लक्ष्मी सेवित और शेषनागके शिरों पर शोभायमान चरणकमल हमारे कुचों पर स्थापित करके कामकी अग्नि बुझाइये।

हे कमललोचन ! हम तुम्हारी दासियाँ तुम्हारे मधुर मदमय एवं पण्डितोंके हृदयोंको हरने वाले वचनों पर मोहित हो रही हैं। अपने अधरोंकी सुधा पिलाकर हमें जीवनदान दीजिये।

हे प्यारे ! संतप्त जनोंको जीवन देनेवाली, कवियों के द्वारा प्रशंसित, पापनाशिनी, श्रवणमात्रसे मङ्गल करनेवाली, कामना और कर्मोंको निर्मूल करने वाली शान्तिमय आपकी कथा को जो श्रवण करते हैं, उन्होंने पूर्व जन्मोंमें बहुतसे दान पुण्य किये हैं।

हे कपटी! प्रिय तुम्हारा ध्यान करते ही मङ्गल-कारी प्रेमपूर्वक देखना और विहार करना एवं एकान्त की हृदय हरनेवाली बातें तथा क्रीड़ाएँ इस समय हमारे चित्तको चंचल कर रही हैं।

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥
दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै-
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहु-
र्मनसि न स्मरं वीर यच्छसि ॥
(भा० १०।३१।११, १२)

हे कान्त ! हे नाथ ! जब आप व्रजके पशुओंको चराते हुए बनको जाते हैं, तब आपके कमलसम कोमल और सुन्दर चरण कंकड़, घास, काँटे इत्यादि कठिन वस्तुओंसे व्यथित होते होंगे—इस चिन्तासे हमारा मन व्याकुल हो उठता है।

हे वीर ! दिनके अन्तमें आप जब गौओंको साथ लेकर व्रजको लौटते हैं, तब रजोरंजित अलकोंसे घिरा हुआ अपना मनोहर मुखारविन्द दिखाकर हमारे हृदयोंमें काम जगा जाते हैं।

अटति यद् भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥
(भा० १०।३०।१५)

दिनको जब आप वृन्दावनमें विचरते हैं, तब आपको बिना देखे आधा क्षण भी हमारे लिये एक युगके समान अपार हो जाता है। जब आप बनसे लौटते हैं, तब कुटिल कुन्तल शोभित आपका श्रीमुख निहारकर हमको जो सुख होता है, सो कहा नहीं जा सकता। हम उस समय पलक बनानेवाले ब्रह्मा को जड़ इत्यादि कठोर वाक्योंसे तिरस्कार करने लगती हैं। पलक जितनी देरमें झपकती हैं, उतना अन्तर भी हमको असह्य है। (क्रमशः)

बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न

छप गया !

छप गया !!

जैवधर्म

वर्षोंसे पाठक जिस ग्रन्थकी बड़ी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे, वह "जैवधर्म" (हिन्दी संस्करण) प्रकाशित हो गया है।

यह ग्रन्थ वर्तमान वैष्णव जगतमें विशुद्ध भक्ति-भागीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भगवद्भक्ति सम्बन्धी सैकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता श्रीचतन्य महाप्रभुके प्रिय पार्षद सप्तम गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें लिखित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'जैवधर्म' का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं—'श्रीभागवत पत्रिका' (मासिक परमार्थिक पत्र) के सम्पादक—त्रिदण्डी स्वामी भक्ति वेदान्त नारायण महाराज।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत अखिल भारतीय गौड़ीय मठों संस्थापक आचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संपादित होनेसे इस ग्रन्थकी उपादेयता और भी बढ़ गयी है।

इसमें अखिल विश्वके निखिल जीवोंके सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य और सनातन धर्म—जैवधर्म (जीवका धर्म) का हृदयग्राही एवं साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। इसमें वेद-वेदान्त, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, पंचरात्र एवं श्रीगौड़ीय-गोस्वामियोंके 'भक्ति-रसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, षट्-सन्दर्भ, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि सद्ग्रन्थोंका सार सहज सरल और रुचिकर भाषामें उपन्यास-प्रणालीमें सागरमें गागरकी भाँति भरा हुआ है।

हिन्दी भाषामें श्रीगौड़ीय-वैष्णवधर्म और उसके सिद्धान्तोंका यह सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ है। हिन्दी साहित्यमें अब तक वैष्णव धर्मके, विशेषतः श्रीगौड़ीय वैष्णव धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका बोध करनेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ का सर्वथा अभाव था। यह 'जैवधर्म' हिन्दी जगतकी इस अभावकी पूर्त्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगतमें, विशेषतः वैष्णव जगतमें युगान्तर उपस्थित करेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अतः पाठकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थरत्नका संग्रह कर अवश्य ही अध्ययन करें।

सोलह पेजी २०×३० आकारके ८०० पृष्ठोंकी सजिल्द पुस्तक। उत्तम कागज पर सुन्दर छपाई।

मूल्य केवल दस रुपये।

मँगानेका पता—

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
पो०—मथुरा (उ. प्र.)

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीश्रीव्यासपूजाका निमंत्रण-पत्र

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ,
पो०—नवद्वीप (नदिया)
१ फरवरी १९६७

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासकुल-श्रमणसङ्घाराध्य-वेदान्तविद्याश्रितेषु—

आगामी १४ फाल्गुन, २७ फरवरी (माघा कृष्णा तृतीया) से १६ फाल्गुन, १ फरवरा ६७ ई० (माघी कृष्णा पंचमी) तक व्यासाभिन्न **जगद्गुरु ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'** (माघी कृष्णा पंचमी) एवं उनके अन्तरंग प्रिय पार्षदवर **परिव्राजकाचार्यवर्य ॐविष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज** (माघी-कृष्णा-तृतीया) की आविर्भाव-तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ा (प० बंग) में तीन दिन **श्रीश्रीव्यासपूजा और तदङ्गीभूत पूजा-पञ्चक** अर्थात् श्रीकृष्ण-पञ्चक, व्यास-पंचक, मध्वादि आचार्य-पंचक, सनकादि-पंचक, श्रीगुरुपंचक और तत्त्वपंचककी पूजा और होम आदि अनुष्ठित होंगे। प्रति दिन हरिकीर्तन, भागवत-पाठ, भाषण, स्तवपाठ, श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-संशन और अञ्जलि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान और विशेष अङ्ग होंगे।

धर्म-प्राण सज्जन महोदयगण उक्त शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें बन्धु-बान्धवोंके साथ योगदान करनेसे समितिके सदस्यवर्ग परमानन्दित और उत्साहित होंगे। इस महदनुष्ठानमें योगदान करनेमें असमर्थ होने पर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने पर भी भगवत् सेवोन्मुखी सुकृति अर्जित होगी।

वैयासकगानुगत्याभिलाषी—
सम्यवृन्द
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्रष्टव्य—वृहस्पतिवारको श्रीपूजा-पंचकादि, श्रील आचार्यदेवके श्रीपादपद्मोंमें पुष्पांजलि, विभिन्न भाषाओंमें प्राप्त प्रबन्ध पाठ, भाषण। शुक्रवारकी श्रीगुरुतत्त्वके सम्बन्धमें प्रवचन। शनिवारको श्रील प्रभुपादके श्रीपादपद्मोंमें अञ्जलि-प्रदान, शामको प्रबन्धादि पाठ एवं श्रीमद्भागवतसे श्रीव्यासदेवके सम्बन्धमें आलोचना।

* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति **श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ**

तेघरिपाड़ा, पो० नवद्वीप,
(नदिया)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग पावनावतारी स्वयं भगवान् **श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि** की निखिल भुवन-मङ्गलमयी **आविर्भाव तिथि-पूजा** (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें **श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति** के उद्योग से उपरोक्त ठिकाने पर आगामी ७ चैत्र, ११ मार्च, मंगलवार से १३ चैत्र, २१ मार्च, सोमवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक **विराट महोत्सव** का अनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन, प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा और **महाप्रसाद वितरण** प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे।

इस उपलक्ष्य में श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ द्वीपों का दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन करते हुए **सोलह-क्रोश की परिक्रमा** होगी। गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी **श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाछी एवं श्रीधाम मायापुरमें** मध्याह्निक भोगराग और प्रसाद सेवाके पश्चात् संध्याको श्रीनवद्वीपमें लौट आने की सुव्यवस्था की गई है।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सबान्धव योगदान कर समिति के सदस्यवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठान का गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समिति के सेवाकार्य में सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। इति १ फरवरी १९६७।

शुद्धभक्त कृपालेश-प्रार्थी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये विदग्धिस्वामी श्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान केशव महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने पर लिखें या भेजें।